

## विकल्पात्मक अनुसन्धान से प्राप्त ज्ञान का शिक्षा में समावेश



मेरे बंधुओं!

मैं स्वयं को आप सभी के बीच पा करके सुख का अनुभव कर रहा हूँ। बहुत दूर-दूर से आप आए हैं। बहुत ध्यान लगा कर एक दूसरे की बात समझ रहे हैं। कहीं न कहीं अन्तिम निष्कर्ष निकलेगा ही, ऐसा विश्वास करके मैं उत्सवित हूँ।

**विकल्पात्मक अनुसंधान से प्राप्त ज्ञान शिक्षा में किस प्रकार पहुंचेगा?** - उसको सुनने के लिए यहाँ इच्छा व्यक्त किया गया है। आप सब बहुत जिज्ञासा से इस बात को सुनना चाह रहे हैं, ऐसा मेरा स्वीकृति है।

मैं इस बात को बहुत अच्छी तरह से परखा हूँ, किसी आयु के बाद हर व्यक्ति - चाहे नर हो या नारी हो - अपने आप को "समझदार" मानता ही है। अभी तक की सोच से कुछ ऐसा निकलता है - "पैसा पैदा कर सकने वाला समझदार है। पैसा पैदा नहीं कर सकने वाला समझदार नहीं है।" इसके पहले "बलशाली" को समझदार मानते रहे। उसके पहले "रूपवान" को समझदार मानते रहे। "बल" और "रूप" के आधार पर समझदारी को पहचानने की कोशिशों को आदमी नकार चुका है। लेकिन ज्यादा "धन" और "पद" अर्जन करने वाले को ज्यादा समझदार आज भी मानते रहे हैं। "धन" और "पद" एक दूसरे के पूरक हो गए। पद से धन, और धन से पद मिलने की बात हो गयी। रूप, बल, पद, और धन के आधार पर हम समझदारी को पहचान नहीं पायेंगे। यह हमारा निष्कर्ष निकला। मानव-चेतना पूर्वक जीना समझदारी है - यह निष्कर्ष निकला।

मानव-चेतना को मानव-परम्परा में लाने के लिए मैंने शिक्षा विधि को शोध किया। शिक्षाविदों को समझाने का कोशिश किया। वह कोशिश होते-होते आज छत्तीसगढ़ राज्य शिक्षा संस्थान इस प्रस्ताव को अध्ययन करने के लिए तैयार हो गया। वह बुद्धि, समय, और साधन लगा कर अध्ययन कर रहा है। यह आपको सूचना देना चाहा।

### **इस अध्ययन की क्या वस्तु है?**

इस अनुसंधान के फलस्वरूप "मानव व्यवहार दर्शन" नामक पुस्तिका तैयार हुआ - जिसको "शोध-ग्रन्थ" भी कह सकते हैं। मानव-व्यवहार-दर्शन में मानव-चेतना विधि से व्यवहार का क्या स्वरूप होता है? न्याय का क्या स्वरूप होता है? इसका वर्णन है। उसको अध्ययन कराते हैं। "मानव व्यवहार दर्शन" में मानव के कर्तव्य और दायित्व को तय किया। मानव का कर्तव्य और दायित्व तय होना ज़रूरी है या नहीं है - इस पर आप ही निर्णय लीजिये। यह निर्णय लेना हर व्यक्ति का अधिकार है।

"मानव कर्म दर्शन" में मानव के करने-योग्य और न करने-योग्य कर्मों का विभाजन होता है। इसकी भी आवश्यकता या अनावश्यकता पर आप अच्छे से विचार कर सकते हैं। यदि यह हमारी आवश्यकता बनता है तो उसके लिए हम तत्पर हो ही जाते हैं। जिसकी आवश्यकता हम स्वीकार नहीं करते, उसके लिए हम तत्पर नहीं हो पाते हैं।

"मानव अभ्यास दर्शन" में व्यवहार और व्यवसाय में अभ्यास कैसे करेंगे - इसका निर्धारण किया गया है।

"अनुभव दर्शन" में प्रमाणित होने के अधिकार को ज्यादा से ज्यादा स्पष्ट किया गया है।

इन चारों भागों की आवश्यकता है या नहीं है - इसको सभी परिशीलन कर सकते हैं, समझ सकते हैं, प्रमाणित कर सकते हैं।

दर्शन के बाद आता है - वाद। वाद में चारों अवस्थाओं के साथ कैसे हम जी पायेंगे - यह वर्णन किया है।

पहला - **समाधानात्मक भौतिकवाद**। भौतिक वस्तुएं कैसे समाधान के अर्थ में काम कर रहे हैं, इसका बोध कराते हैं।

दूसरा - **व्यवहारात्मक जनवाद**। मानव व्यवहार में जागृति को कैसे प्रमाणित करता है,

इसका बोध कराते हैं। मानव का व्यवहार मानव के साथ न्याय, धर्म, और सत्य पूर्वक होता है। मानव का व्यवहार मनुष्येतर प्रकृति के साथ नियम, नियंत्रण, संतुलन पूर्वक होता है। इसको स्पष्ट किया है।

**अनुभवात्मक अध्यात्मवाद** में - अध्यात्म (व्यापक) में समाई सम्पूर्ण जड़-चैतन्य प्रकृति का हमको अनुभव होता है। फलस्वरूप मानव सह-अस्तित्व में सह-अस्तित्व को प्रमाणित करने वाला हो जाता है। पदार्थ न हो, केवल व्यापक वस्तु हो - उसका कोई अनुभव नहीं है। केवल पदार्थ हो, व्यापक न हो - तब भी मानव के अनुभव करने का कोई रास्ता नहीं है।

अनुभव के लिए प्रकृति और व्यापक वस्तु साथ-साथ में होना आवश्यक है। ज्ञान-अवस्था की प्रकृति ही व्यापक वस्तु को अनुभव करता है। फलस्वरूप परम-सत्य को प्रमाणित करता है। इसीको मैंने अनुभव किया है। उसी अनुभव के आधार पर ही पूरे बात को प्रस्तुत किया है।

उसके बाद आते हैं - "शास्त्र"। शास्त्र में पहला है - **मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान**। "चेतना" का मतलब है - ज्ञान। "संचेतना" का मतलब है - सत्य को प्रकट करने वाला ज्ञान। मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान में मानवीयता पूर्वक प्रमाणित होने वाले १२२ आचरणों को बताया गया है। इन आचरणों के आधार पर मानव व्यवस्था में जी पाता है।

**व्यवहारवादी समाजशास्त्र** में मानव-संचेतना के व्यवहार में प्रमाणित होने की बात है।

**आवर्तनशील अर्थशास्त्र** में उत्पादन के लिए नियोजित होने वाले प्राकृतिक-ऐश्वर्य के स्रोत को बनाए रखते हुए उत्पादन और विनिमय व्यवस्था के स्वरूप को बताया गया है।

इन सब की आवश्यकता है या नहीं - इसको आप शोध कर सकते हैं, समझ सकते हैं, स्वीकार सकते हैं, नकार भी सकते हैं। जो आपकी "इच्छा" हो - आप वही करिए। आप यही स्वीकारो - ऐसा मेरा कोई "आग्रह" नहीं है। किंतु है ऐसा ही! - ऐसा बताने की "धृष्टता" कर रहे हैं। या "साहस" कर रहे हैं। या "अनुग्रह" कर रहे हैं। इन तीन में से जो आप स्वीकारें - वही ठीक है।

इस ढंग से दर्शन, वाद, और शास्त्र का प्रयोजन स्पष्ट हुआ। अभी तक हमारे साथ

जितने भी लोग अध्ययन किए हैं - इसकी अत्यन्त आवश्यकता है, ऐसा मान कर स्वीकारे हैं। आगे यहाँ कैसे होगा, और जगहों पर कैसे होगा, धरती पर और राज्यों पर कैसा होगा - इसको आगे भविष्य बतायेगा। अभी छत्तीसगढ़ राज्य में जो स्वीकृति बनी है, वहाँ कहने लगे हैं - "इस प्रस्ताव को समझे बिना कोई आदमी के स्वरूप में जी नहीं सकता।" इसको लेकर यहाँ भी प्रयोग हो सकता है। और जगह में भी प्रयोग हो सकता है।

**मानव-संचेतना पूर्वक मानव मानव के साथ न्याय-धर्म-सत्य पूर्वक प्रकट होता है और मनुष्येतर प्रकृति के साथ नियम-नियंत्रण-संतुलन पूर्वक प्रकट होता है।** नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, और सत्य - इन ६ भागों में हर समझदार व्यक्ति प्रकट होता है। इसमें कोई "झगडा" करने की जगह है या नहीं - इसको हर व्यक्ति शोध कर सकता है, हर व्यक्ति समझ सकता है, हर व्यक्ति जी सकता है, हर व्यक्ति प्रमाणित हो सकता है। यह ऐसा "इच्छा" होने पर ही सम्भव है। जीव-चेतना में ही जिसके जीने की इच्छा हो - तो वह इस बात पर ध्यान भी नहीं देगा, इसको करेगा भी नहीं। "इच्छा" हो तो - हर व्यक्ति इस प्रस्ताव को समझ कर, जी कर प्रमाणित कर सकते हैं। "इच्छा" हो तो - आप इसको देख सकते हैं, अध्ययन कर सकते हैं। मेरी स्वीकृति है - यहाँ हम जितने भी लोग हैं, वे समझने के अर्थ में ही एकत्र हुए हैं, समझा हुआ को प्रकट करने के अर्थ में ही एकत्र हुए हैं।

इस प्रकार दर्शन, विचार, और शास्त्र जो तैयार हुए उसको शिक्षा में देने का स्वरूप दिया - "चेतना विकास - मूल्य शिक्षा"।

दर्शन, विचार, शास्त्र के साथ "मानवीय आचार संहिता स्वरूपी संविधान" लिख कर दिया। "मानवीयता पूर्ण आचरण" के स्वरूप के आधार पर यह संविधान लिखा। उसको भी आप लोग देख सकते हैं।

शिक्षा में इस विकल्पात्मक प्रस्ताव के "अध्ययन" की बात रहेगी।

**अध्ययन का मतलब है - अधिष्ठान के साक्षी में, अर्थात् अनुभव के साक्षी में स्मरण पूर्वक हम जो कुछ भी क्रिया करते हैं - वह सब का सब अध्ययन है।**

अनुभव कहाँ रहता है? अध्ययन कराने वाले के पास रहता है। अध्ययन कराने वाले के अनुभव की रोशनी में हम जो कुछ भी सोचते हैं, समझते हैं, स्वीकारते हैं - वह सब का

सब अध्ययन है।

### अध्ययन कैसे कराते हैं?

यहाँ जितने भी लोग बैठे हैं, सभी को "पठन" करना आता है - ऐसा मैं मानता हूँ। पठन भर करने से काम नहीं चलता है। अध्ययन करना ज़रूरी है। अध्ययन के लिए प्रस्तावित किया है - हर शब्द का अर्थ होता है। अर्थ के स्वरूप में अस्तित्व में वस्तु होता है। अस्तित्व में वस्तु को हम समझ लेते हैं, तो हमने अध्ययन किया। वस्तु का साक्षात्कार होने से हम अध्ययन किया। यदि वस्तु का साक्षात्कार नहीं हुआ - मतलब हमने अध्ययन नहीं किया। यह बात स्पष्ट हुआ। इस प्रकार हमने अध्ययन किया या नहीं किया - उसको हर दिन हम सोच सकते हैं, समझ सकते हैं, स्वीकार सकते हैं, प्रमाणित कर सकते हैं।

यह कैसे होता है? कहाँ पर होता है? इसका उत्तर है - यह कल्पनाशीलता से होता है। हर व्यक्ति में - बच्चे से बूढ़े में कल्पनाशीलता समाई है। कल्पनाशीलता और कर्म-स्वतंत्रता के योगफल में "तदाकार-तद्रूप विधि" आती है। तदाकार-तद्रूप विधि से मनुष्य द्वारा अस्तित्व में वस्तु को पहचानना बनता है। तदाकार विधि से मनुष्य में वस्तु की पहचान होती है। तद्रूप विधि से मनुष्य प्रमाणित होता है। तद्रूप विधि से प्रमाण आत्मा (गठन-पूर्ण परमाणु का मध्यांश) में अनुभव होने के बाद है। इस विधि से अध्ययन कराते हैं।

यह अध्ययन हर मानव-संतान को स्वीकार होता है। इसका सर्वप्रथम प्रयोग बिजनौर में हुआ। वहाँ पाया - यह बात मानव-संतान को स्वीकार होता है। वहाँ अभिभावकों से हमने पूछा - "आप क्या चाहते हो, आपके बच्चे समझदार बन कर समझदारी पूर्वक जियें या नौकरी करें?" उसके उत्तर में ९०% अभिभावक कहे - "नौकरी करना चाहिए!" १०% लोग कहे - "नौकरी भी करना चाहिए, समझना भी चाहिए।"

उसके बाद अभी छत्तीसगढ़ में राज्य-शिक्षा के अधिकारियों और अध्यापकों के साथ हम एक कार्य-गोष्ठी किए। उस कार्य-गोष्ठी का मूल मुद्दा था - **"वेतन-भोगी क्या वास्तविक रूप में प्रमाणित हो सकता है या नहीं?"** इसका उत्तर मैंने दिया - वेतन-भोगी "प्रमाण" नहीं हो सकता। वेतन-भोगी दूसरा वेतन-भोगी को ही तैयार करेगा - दूसरा कुछ भी नहीं करेगा। प्रमाणित व्यक्ति ही प्रमाणित-व्यक्ति को तैयार करेगा। वेतन-भोगी "प्रेरक" हो सकता है। उस आधार पर वे लगभग १०० अध्यापक-गण वहाँ

अध्ययन कर रहे हैं। उनको अध्ययन करते हुए २ महीना हो चुका है, तीसरा महीना पूरा होने वाला है। उनको अध्ययन कराने वाले दो व्यक्ति यहाँ इस सभा में ही बैठे हुए हैं।

मध्यस्थ-दर्शन के वांग्मय के मूल-प्रबंधों (दर्शन, वाद, शास्त्र) को स्नातक-कक्षा में पढ़ाने का सोचा जा रहा है। उसके पहले दसवीं कक्षा तक पाठ्य-पुस्तकों को तैयार किया जा रहा है। कक्षा-१ से कक्षा-५ तक की पाठ्य-पुस्तकों को तैयार करके राज्य-शिक्षा को दे दिया है - जिसको वे छपवाने के काम में लगे हैं। अगले वर्ष तक वह प्रभाव-शील हो जायेगी। इस ढंग से इस प्रस्ताव को शिक्षा में समावेश करने की एक प्रक्रिया चल रही है, अध्ययन चल रहा है, कार्य चल रहा है, प्रयत्न चल रहा है।

यह तो बच्चों तक इस बात को पहुंचाने की बात थी। अब सवाल आता है - बड़े-बुजुर्गों का क्या करोगे? उनको भी तो इस शिक्षा की जरूरत है। उसका उत्तर है - "लोक शिक्षा"। इस पूरी बात को "लोक-शिक्षा" विधि से हम बड़े-बुजुर्गों को विदित करायेंगे। विदित कराने का कार्यक्रम अभी शुरू नहीं किए हैं। वह एक आवश्यकता है।

अभी जितना बात आपको बताया, उसमें कोई शंका हो - तो आप मुझसे पूछ सकते हैं। मध्यस्थ-दर्शन को शिक्षा के स्वरूप में प्रस्तुत करने की विधि के बारे में जो कुछ भी मैंने बताया - उसको लेकर कुछ भी शंका हो तो आप मुझसे पूछ सकते हैं।

**प्रश्न: इस ज्ञान के अर्थ में शिक्षा कब तक सम्भव हो पायेगी?**

उत्तर: समझने पर सम्भव हो पायेगी। ज्ञान के आधार पर हमको जीना है या नहीं जीना है - उसको तय करिए। जीव-चेतना में समस्या पूर्वक जीना होता है। मानव-चेतना में समाधान-पूर्वक जीना होता है। आपको कैसे जीना है? - आप सोचिये। जीव-चेतना में समस्या के अलावा कुछ होता नहीं। मानव-चेतना में समाधान के अलावा कुछ होता नहीं। जो करना है, वही करिए।

धरती का बीमार होना मानव की करतूत से हुआ या और कोई भूत किया? इसको भी सोचिये। यदि आपको यह स्वीकार होता है यह मानव ने किया - तो आप यह भी स्वीकार सकते हैं कि मानव ने जीव-चेतना वश यह अपराध किया। इस बात को स्वीकारना या नहीं स्वीकारना आपके हाथ में है। इसमें मेरा कोई "आग्रह" नहीं है। जैसा आपका विचार हो - वैसा ही करिए।

"कब तक, कितनी देर में समझेंगे" वाली बात के उत्तर में - यह सब सकल कुकर्म करने में जिसमें धरती को बरबाद किया, उसमें इतना दिन लगा है। अब इस प्रस्ताव को पूरी शिक्षा में समावेश होने में भी कुछ समय तो लगेगा।

**प्रश्न: "अध्ययन" और "अध्यापन" को समझाइये।**

उत्तर: अध्ययन और अध्यापन संयुक्त रूप में होता है। अध्ययन करने वाले और अध्यापन कराने वाले के योग में अध्ययन होता है। (अध्यापक के) अनुभव की रोशनी में विद्यार्थी जितनी भी समझने की प्रक्रिया करते हैं - उसका नाम है "अध्ययन"। उसके समर्थन में बताया - हर शब्द का अर्थ होता है। अर्थ के स्वरूप में अस्तित्व में वस्तु होता है। वस्तु का साक्षात्कार होने से हम अध्ययन किए।

अध्ययन "तदाकार-विधि" से होता है। तदाकार कैसे होता है? हर व्यक्ति के पास कल्पनाशीलता और कर्म-स्वतंत्रता स्वत्व के रूप में रखा है। आज पैदा होने वाले बच्चे में भी, कल मरने वाले वृद्ध में भी। कल्पनाशीलता के प्रयोग से तदाकार होता है। चाहे जीव-चेतना में चोरी-डकैती का काम सिखाना हो - वह भी तदाकार विधि से सम्भव होता है। मानव-चेतना का न्याय-धर्म-सत्य समझाना हो - वह भी तदाकार-विधि से सम्भव होता है।

**प्रश्न: अध्यापक में क्या योग्यताएं आवश्यक हैं?**

उत्तर: अध्यापक समझा हुआ, और समझदारी को प्रमाणित किया हुआ व्यक्ति होता है। समझदारी को मानव-चेतना विधि से प्रमाणित करता है। ऐसा व्यक्ति हर मानव-संतान को स्वीकार होता है। समझदारी से कम में कोई "अध्यापक" होता नहीं है। उससे पहले होता है वही - समस्या पैदा करने वाला। जीव-चेतना में जीने वाला अध्यापक समस्या के लिए ही आधार बनेगा, दूसरा कुछ भी नहीं। मानव-चेतना में जीने वाला अध्यापक समाधान का ही आधार बनेगा, दूसरा कुछ भी नहीं। जो आपकी इच्छा हो वही करिए।

मैंने आपको एक उदाहरण बिजनौर के एक स्कूल का दिया था। वहाँ पर विद्यार्थियों में जो मुखरण हुआ, उससे उनके माता-पिता और आगंतुक दोनों चकराए थे। उसके बाद अछोती (रायपुर) के पास मुरमुंदा गाँव में भी वैसा ही हुआ था। उसके बारे में मैं थोड़ा और बताना चाहूँगा। मुरमुंदा गाँव के सरकारी स्कूल के अध्यापक - साहू जी - यहाँ हमारे बीच बैठे हुए हैं। वहाँ के बच्चों को यहाँ बैठे अंजनी अग्रवाल की पत्नी मीना

जाकर संबोधित करती हैं। वह स्कूल शुरू होने के एक घंटा पहले वहाँ जाती हैं। जब वह वहाँ पहुँचती हैं तो बच्चे उनके लिए अघोरते हुए ही मिलते हैं। वहाँ एक दिन सरकारी अफसर ADI पहुँचा। उसने बच्चों से पूछा - "तुम हमसे क्या सीखना चाहते हो?" बच्चों ने कहा - हमको न्याय सिखाओ! यह सुन कर ADI चकराया। सुप्रीम कोर्ट तक मैं न्याय का अता-पता नहीं है! उसने वापस जा कर अपने अफसर को बताया, और बात कलेक्टर तक पहुँची। कलेक्टर ने स्वयं स्कूल आ कर देखा। उसने भी "न्याय" को लेकर बच्चों से वह प्रश्न सुना। उसने बच्चों से पूछा - "क्या तुम न्याय जानते हो?" बच्चों ने कहा - "हाँ, हम न्याय जानते हैं।" उसने फिर पूछा - "तुम किसके साथ न्याय करते हो?" बच्चों से उत्तर मिला - "हम अपने भाई-बहन, मित्रों, माता-पिता, और अध्यापकों के साथ न्याय करते हैं।" चक्रित हो कर उसने पूछा - "बाकी सब के साथ क्यों न्याय नहीं करते हो?" बच्चों ने कहा - "वह अभी हम सीखे नहीं हैं न! तुमको सीखना हो तो तुम अच्छी जा कर सीख लेना!" यह सुन कर कलेक्टर काफी प्रभावित हुआ - और तीन-हजार अध्यापकों को जीवन-विद्या का शिविर कराया। यह वहाँ की घटित घटना है।

### **प्रश्न: अध्यापक की भौतिक आवश्यकताएं कैसे पूरी होंगी?**

उत्तर: समाधान पूर्वक जीने के क्रम में "समृद्धि" का उपाय निकलता है। मैं एक सामान्य परिवार का आदमी हूँ। मैं जब समाधान पा गया तो मुझसे समृद्धि का उपाय निकल गया। कृषि करता हूँ, गो-पालन करता हूँ, आयुर्वेद को मैं जानता हूँ, सामान्य औषधियों को पहचानता हूँ - उसके आधार पर चिकित्सा करता हूँ। इन तीन कामों को मैं करता हूँ। इनके चलते मेरा कोई काम रुका नहीं है। मैं हर जगह अपने हाथ पैरों से पहुँचता हूँ। मैं पराधीन नहीं हूँ।

भौतिक वस्तुओं के प्रयोजन को मैं इस तरह पहचाना हूँ - परिवार में जितने भी लोग रहते हैं, उनके शरीरों का पोषण, और संरक्षण (घर-बार), और उसके साथ 'समाज-गति' में भागीदारी करने के लिए भौतिक-साधनों की आवश्यकता होती है। समझदारी पूर्वक इस आवश्यकता का निश्चयन होता है। उस "निश्चित आवश्यकता" से अधिक उत्पादन कर लेने से मैं समृद्धि का अनुभव करता हूँ।

अभी पैसा इकट्ठा करके आदमी क्या करता है, आप सब लोग वह जानते ही हैं। कुल मिला कर "भोग" और "संघर्ष" के लिए पैसा इकट्ठा करता है। "स्वस्थ रहना चाहिए" - इस बात को अभी के समय में कहा जाता है। स्वस्थ क्यों रहना है? इसका उत्तर



तलाशने जाते हैं तो वही है - "भोग" के लिए स्वस्थ रहना है, या "संघर्ष" के लिए स्वस्थ रहना है।

भोग और संघर्ष के लिए "पैसा इकट्ठा करना" और "स्वस्थ रहना" सही है - या - "शरीर-पोषण, संरक्षण, समाज-गति के लिए श्रम पूर्वक उत्पादन करना" और "समाधानित रहना" सही है? - आप ही सोचिये! आप सोच कर अपने आप निर्णय लीजिये।

**प्रश्न: समझदारी को प्रमाणित कौन करेगा? समाज या व्यक्ति?**

उत्तर: समझदारी के बाद हर व्यक्ति - परिवार के रूप में "संस्कृति" और "सभ्यता" को वहां करता है; तथा सभा के रूप में "विधि" और "व्यवस्था" को वहां करता है। उसी के आधार पर "परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था" का प्रगटन है। "समझदार-परिवार" मानवीय सभ्यता और संस्कृति का वहन करता है। "समझदार परिवार-सभा" मानवीय विधि और व्यवस्था का वहन करता है।

**परिवार ही पूरा प्रमाण का आधार है।**

परिवार में प्रमाणित होने के बाद ही हम संसार में प्रमाणित होते हैं। इस तरह प्रमाणित होना हर समझदार-व्यक्ति का माद्दा है, अधिकार है, प्रवृत्ति है।

**प्रश्न: अभी इतनी गरीबी, सामाजिक-असंतुलन के बीच खड़ा आदमी "स्वावलंबन" के बारे में कैसे काम करे?**

उत्तर: आपकी बात को स्वीकार जा सकता है। यह स्थिति व्यक्ति के साथ कब तक रहेगा? इसका उत्तर है - जब तक समझदार नहीं बनेगा, तब तक रहेगा। समझदार होने के बाद स्वावलंबी होने के लिए अपने आप जगह बनता है। मैंने आपको अपना उदाहरण बताया था। मैं कोई बहुत धनाढ्य व्यक्ति नहीं हूँ। भक्ति-विरक्ति विधि से मैंने साधना किया। भक्ति-विरक्ति में कोई संग्रह होता नहीं है। समाधान संपन्न होने के बाद मैंने तीन उपायों (कृषि, गो-पालन, और आयुर्वेद-चिकित्सा) को समृद्धि के लिए अपनाया। इन तीन के अलावा तीस और उपाय मेरे पास हैं, जिनको मैं क्रियान्वयन कर सकता हूँ। समाधान के बाद समृद्धि संपन्न होने का उपाय निकाल लेना हर व्यक्ति के माद्रे की बात है। बिना "समझ" के किसी के पास न साधन अनुकूल होता है, न

परिस्थितियां। समझ या समाधान के बाद सारी परिस्थितियां अनुकूल होती हैं, जितना साधन होता है - वह आवश्यकता से अधिक होता है।

**श्रम-शीलता हमारा प्रधान साधन है।** अभी पैसे को "प्रधान साधन" मान रहे हैं। उसके स्थान पर यहाँ कह रहे हैं - हमारी श्रम-शीलता ही हमारा प्रधान साधन है। श्रम-शीलता सबके पास है। एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो श्रम-शीलता से रिक्त हो। गूंगे, लूले, लंगड़े - सभी के पास श्रमशीलता रहता है।

देखिये - "बार्ते करने" से कुछ नहीं होता। "जीने" से होता है। बार्ते हम गाढा भर के कर सकते हैं - उससे कोई फायदा नहीं है। "जीने" से फायदा है। "जीना" समाधान के बिना होता नहीं! समाधान के बिना कोई "जी" ही नहीं सकता! यह मैंने देख लिया। अपराध कोई "जीना" नहीं है। अनर्थ कोई "जीना" नहीं है। झूठ बोलना कोई "जीना" नहीं है।

समाधान पूर्वक "जीना" है।

समृद्धि पूर्वक "जीना" है।

न्याय-धारण-सत्य पूर्वक "जीना" है।

नियम-नियंत्रण-संतुलन पूर्वक "जीना" है।

ऐसे जीने के लिए समझना ही पड़ेगा। मैंने समझने में २५-३० वर्ष लगाए। आप इसको समझने के लिए २५ हफ्ते तो लगाइए! २५ महीने तो लगाइए! २५ महीना तो आप लगा सकते हैं न? यदि लगायेंगे तो आप समझ जायेंगे। समझाने की व्यवस्था हमने कर दिया है।

**प्रश्न: "मोक्ष" क्या है?**

उत्तर: भ्रम-मुक्ति ही मोक्ष है। भ्रम मूलतः शरीर को जीवन मानना है। शरीर को जीवन मानने वाला जीवन ही है। जीवन ही जीवन्त-शरीर में होने वाली संवेदनाओं के आधार पर ऐसा मान बैठता है। जीवन ही ऐसे बुद्ध बनता है। फलस्वरूप दुःख भोगता है। शरीर को जीवन मान लेना ही "भ्रम" है। भ्रम से मुक्त होना ही "मोक्ष" है। भ्रम मुक्ति = अतिव्याप्ति, अनाव्याप्ति, अव्याप्ति दोषों से मुक्त होना।

सबको धन्यवाद! शुभाशीष! प्रणाम! और नमन!

- बाबा श्री नागराज शर्मा के उदबोधन पर आधारित (२ अक्टूबर २००९, हैदराबाद)